2024 TPJ | VOLUME 2, ISSUE 1
April - June | ISSN – 2584- 0517

# काश्मीर शैवदर्शन की अवधारणाओं में सामाजिक-समता

**डॉ. सर्वेश त्रिपाठी**
सहायक आचार्य, केन्द्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय

**सारांश**
आधुनिक विमर्श में सामाजिक समता एक आधारभूत मूल्य के रूप में स्वीकृत हो चुकी है, लेकिन वर्त्तमान-विमर्श में जिस रूप में यह आज प्रवृत्त है ठीक उसी रूप में इसको भारतीय दर्शन में खोजना एक दुष्कर कार्य है, क्योंकि भारतीय दर्शन समग्रता की दृष्टि को लेकर चलने के कारण बहुत अधिक शाब्दिक-वर्गीकरण नहीं करता है ,अतः इस पर केन्द्रित शोधदृष्टि के लिये व्यापक मूल्य-चेतना की आवश्यकता है और इसकी पूर्ति के लिए हमें अद्वैत शैव तंत्रों की ओर देखना चाहिए , क्योंकि इन तंत्रों का 'जीवन-स्वीकरण-स्वभाव' (life affirming attitude) इनकी अपनी निजन्धर-विशेषता है; और इस तन्त्र क्षेत्र में प्रवेश करने के लिए हमारे पास एकमात्र प्रमाणिक स्रोत काश्मीर शैवदर्शन है जोकि जीवनमुक्त की सक्रिय अवधारणा, वैश्विक समता दृष्टि, जगत का आत्मीकरण तथा वासना के उदात्तीकरण जैसे मूलभूत प्रत्ययों के द्वारा इस विश्व में सामरस्य स्थापित करने की बात करता है। प्रो.नवजीवन रस्तोगी के शब्दों में कहें तो यहां हीगल की भांति केवल 'विरोधियों की एकता' नहीं है बल्कि क्रोचे की तरह 'भिन्नों की एकता' भी है । काश्मीर शैवदर्शन की मूल बात है कि समता का अर्थ विषमता का अभाव नहीं, बल्कि उस वैषम्य को एक व्यवस्था के अन्तर्गत एक समंजस और परस्परानुजीवी स्थान प्रदान करना है ताकि प्रतीत हो रहा भेद, मौलिक अभेद का मज़बूत व सम्पन्नतर प्रतीक बन सके ,उदाहरण के लिए काश्मीर शैवदर्शन में उल्लिखित समताष्टक को देख सकते हैं जिसकी चर्चा आचार्य अभिनवगुप्त तंत्रालोक 4 आह्निक मे उठाते हैं। इसी तरह 'तद्भूमिका: सर्वदर्शन स्थितय:' जैसा सूत्र देकर आचार्य क्षेमराज शिवाद्वयवाद की ओर से यह सिद्धान्त प्रतिपादित करते हैं कि हर व्यक्ति की दृष्टि में यद्यपि उसका विचार ही सही और उसका निष्कर्ष ही अंतिम है तब भी अभिव्यक्ति की अनन्त सम्भावनाओं को नकारा नहीं जा सकता। इस प्रकार की अवधारणाओं के द्वारा काश्मीर शैव दर्शन हमारे सामने एक जीवन-स्वीकार-पद्धति को स्थापित करता है। इस शोध पत्र में काश्मीर शैव दर्शन की ऐसी ही सामाजिक समता दृष्टि को सामने लाने का प्रयास किया जाएगा।।

**कुंजी-प्रत्यय** – काश्मीर शिवाद्वयवाद, सामरस्य, चेतना, सामाजिक-समता. अभिनवगुप्त, तन्त्र, अद्वैतमूलक पद्धतिशास्त्र

**प्रस्तावना –**
सामाजिक-समता को लेकर दो दृष्टियां भारतवर्ष के परिप्रेक्ष्य में प्राप्त होती हैं ; एक वह आध्यात्मिक दृष्टि जिससे भारत के समस्त दार्शनिक संप्रदाय अनुप्राणित रहे हैं जिसका मानना है कि सभी में एक ही ईश्वर या आत्मा अथवा चेतना का वास है अतः यह सब कुछ एक ही मूल चेतना का विस्तार है और उसी में स्थित है ।
इस प्रकार यह आध्यात्मिक दृष्टि; लिंग,वर्ण,कर्म,गुण आदि से निरपेक्ष है और इसकी यह समता भावना केवल मनुष्य-मात्र तक सीमित ना होकर प्राणिमात्र की भावना के रास्ते से

2024 TPJ | VOLUME 2, ISSUE 1
April - June | ISSN – 2584- 0517

होकर कंकर-कंकर-शंकर के 'सर्वं शिवात्मकम्' नामक सिद्धांत में विश्रान्त होती है। प्रकृत आलेख में जिस दर्शन के परिप्रेक्ष्य में हम आगे बढ़ेंगे उसने अपनी तत्त्व-मीमांसा और ज्ञान-मीमांसा में जड़-चेतन के पारम्परिक भेद को समाप्त करके उसे जड और अजड की शब्दावली में दिखाया है क्योंकि काश्मीर शिवाद्वयवाद के अनुसार अचेतन कुछ है ही नहीं, सबमें चेतना का संस्पर्श है। अपने तार्किक प्रसंग के वर्णन में भी शैवदार्शनिक इस बात का पूरा ध्यान रखते हैं ; सोमानन्द की यह उक्ति द्रष्टव्य है-

**घटो मदात्मना वेत्ति वेद्म्यहं च घटात्मना ।**
**सदाशिवात्मना वेद्मि स वा वेत्ति मदात्मना ॥**
**नानाभावैः स्वमात्मानं जानन्नास्ते स्वयं शिवः।। *1**

इसी तरह दूसरी दृष्टि वह है जो आत्मा या ईश्वर की सत्ता को नहीं मानती है। इस दृष्टि के लिए मनुष्यता का सामान्य गुण ही सामाजिक-समता का आधार बनता हुआ दिखता है ; हालांकि यह दूसरी दृष्टि वैश्विक-सार्वभौमिकता की संस्कृति को नहीं छू पाती है क्योंकि इसके केंद्र में केवल मनुष्य जाति ही आती है जबकि अध्यात्मिक दर्शन धाराओं के चिंतन में सकल सृष्टि की बात आ जाती है इस प्रकार हम देखते हैं कि भारतीय जीवन की दोनों धाराओं में सामाजिक समता का सिद्धांत अनुस्यूत है। प्रकृत आलेख में काश्मीर शिवाद्वयवाद में सामाजिक समता के बोधक प्रत्ययों पर विचार करने का प्रयास किया जाएगा।

**सम्प्राप्ति-**

काश्मीर शैव दर्शन की मूल अवधारणा ज्ञान और क्रिया के सामरस्य को परमचेतना का स्वरूप मानती है। सामरस्य की यह अवधारणा किसी भी तत्त्व की सत्ता का अपलाप ना करके प्रत्येक को एक दूसरे के साथ समरस करती है, इस प्रकार यह सभी तत्वों की सत्ता को अक्षुण्ण रखती हुई इतरग्रहण-पूर्वक निश्चय या ज्ञान की प्रक्रिया को पूर्ण करती है, यही बिन्दु काश्मीर शैवदर्शन की सामाजिक समता के प्रत्यय को बल प्रदान करता है। इस सामरस्य की भावना को ना अपनाने वालों के प्रति अभिनवगुप्तपाद गीतार्थ-संग्रह में तनिक कठोर वचन कह देते हैं:-

**परमात्मनः सर्वगतं रूपं यो न पश्यति, तस्य परमात्मा पलायितः स्वरूपप्रकटीकाराभावात् ।*2**

गीता के श्लोकों की आचार्य अभिनवगुप्त ने शिवाद्वयवाद की दृष्टि से जो व्याख्याएँ की हैं उनमें किसी प्रकार के भेदभाव को स्थान ना देकर उन्होंने भेदभाव फैलाने वाले लोगों पर आपत्ति भी उठाई है।

यहां ध्यान देने योग्य बात यह है कि यह 'सामरस्य' शब्द कश्मीर शैवदर्शन का एक गूढ़ दार्शनिक प्रत्यय है जो कि सामाजिक अर्थसंदर्भों को भी अपने में गर्भित किए हुए हैं, प्रो. नवजीवन रस्तोगी के शब्दों में कहें तो यहां हीगल की भांति केवल 'विरोधियों की एकता' नहीं है बल्कि क्रोचे की तरह 'भिन्नों की एकता' भी है । यह सामरस्य क्षुद्र अहन्ता के विगलन से प्रारम्भ होता है और आध्यात्मिक संस्कार से सम्पन्न व्यक्ति में इस क्षुद्र अहन्ता का यह विगलन और संस्कारिता का समीकरण सबसे ऊँचे व नीचे दोनों स्तरों पर होता है। शिवाद्वयवाद में यह बात बार–बार उभर कर सामने आती है कि मनुष्य के वैयक्तिक, सामाजिक व आध्यात्मिक व्यक्तित्व परस्पर विरोधी नहीं हैं, बल्कि एक ही चेतना के क्रमिक विकास हैं और इनमें से प्रत्येक पक्ष की विभिन्न अवस्थाओं में केवल स्तरभेद है, गुणात्मक भेद नहीं।

काश्मीर शैवदर्शन की मूल बात है कि समता का तात्पर्य विषमता का लोप हो जाना नहीं, बल्कि उस वैषम्य को एक व्यवस्था के अन्तर्गत एक समंजस और परस्परानुजीवी स्थान प्रदान करना है ताकि आया हुआ भेद, एक पूर्ण-अभेद का सम्पन्नतर प्रतीक बन सके।

काश्मीर शैवदर्शन में समता की उद्घोषणा पदे पदे प्राप्त होती है किंतु वह बहुत व्यापक स्तर पर है, हम उसमें से सामाजिक समता के अंश को ग्रहण करके समाज के लिए एक प्रयास अवश्य कर सकते हैं उदाहरण के लिए काश्मीर शैवदर्शन में उल्लिखित समताष्टक को देख सकते हैं जो कि शक्ति-समंगमतंत्र से आया है जिसकी चर्चा आचार्य अभिनवगुप्त तंत्रालोक में उठाते हैं, और जिसे टीकाकार जयरथ तथा महार्थमञ्जरीकार महेश्वरानन्द भी रेखांकित करते हैं– समता सर्वभावानां वृत्तीनां चैव सर्वशः।

2024 TPJ | VOLUME 2, ISSUE 1
April - June | ISSN – 2584- 0517

**समता सर्वदृष्टीनां द्रव्याणां चैव सर्वशः॥**
**भूमिकानां च सर्वासामोवल्ह्रीनां तथैव च ।**
**समता सर्वदेवानां वर्णानां चैव सर्वशः।।*3**

इस बात को तन्त्रालोक के चौथे आह्निक मे अभिनवगुप्तपाद ने उठाया है और इसकी चर्चा विज्ञानभैरव तंत्र की 'योगी समत्वविज्ञानसमुद्गमनभाजनम्' वाली कारिका की व्याख्या में भी प्राप्त होती है । *4

इसी तरह सर्वत्र शिवता का संस्पर्श देखता हुआ शिवाद्वयवाद किसी को भी कुत्सित या निंदित नहीं करता, इसके अनुसार हम जिसे कुत्सित कह रहे हैं, वह भी पारमेश्वरी शक्ति का ही प्रसार है। सोमानन्द कहते हैं–

**कुत्सिते कुत्सितस्य स्यात् कथमुन्मुखतेति चेत्।**
**रूपप्रसाररसतो गर्हितत्वमयुक्तिमत्॥ *5**

प्रत्यभिज्ञाहृदय के गंभीर दार्शनिक विवेचन में भी शैवदार्शनिक सामाजिक-सामरस्य के पथ से विचलित नहीं होते हैं और 'तद्भूमिका: सर्वदर्शन स्थितय:' जैसा सूत्र देकर आचार्य क्षेमराज शिवाद्वयवाद की ओर से यह सिद्धान्त प्रतिपादित करते हैं कि हर व्यक्ति की दृष्टि में यद्यपि उसका विचार ही सही और उसका निष्कर्ष ही अंतिम है तब भी अभिव्यक्ति की अनन्त सम्भावनाओं को नकारा नहीं जा सकता, वास्तव में यह विचार एक सामाजिक समावेशीकरण के साथ साथ एक बहुत प्रबल आशावादी मनोवैज्ञानिकता को भी जन्म देता है जो कि मानव-मन को आग्रहों से बचाकर एक प्रसन्न और मिलनसार आयाम प्रदान करता है। इसी तरह गीता पर आचार्य अभिनवगुप्त की टीका में उनके विचारों और इस दर्शन की दीक्षा प्रक्रिया द्वारा सभी प्रकार की उपाधियों जाति आदि के निराकरण के द्वारा, अधिकारी की अत्यंत सामाजिक अवधारणा और जगत के आत्मीकरण आदि के द्वारा काश्मीर शैव दर्शन हमारे सामने एक जीवन-स्वीकार-पद्धति (life affirming Attitude) को स्थापित करता है जो कि विभिन्न बोली,भाषा, धर्म,, संस्कृति वाले भारत जैसे देश के लिए और विश्व के लिए समावेशीकरण तथा सामाजिक सामरस्य का एक रास्ता खोलता है। शिवाद्वयवाद की यह अंतर्दृष्टि वहां के कवियों और संतों की वाणी में भी प्रवाहित हुई है उदाहरण के लिए ललद्यद का यह पद्य दर्शनीय है:-

**शिवो वा केशवो वापि जिनो वा द्रुहिणोऽपि वा ।**
**संसाररोगेणाक्रान्तामबलां मां विचिकित्सतु ।।*6**

इसी प्रकार भोग और मोक्ष के पारस्परिक विरोध का समंजन करते हुए भी शिवाद्वैतवाद इन दोनों को मोक्षमार्ग में सहायक मानता है, ये दोनों पक्ष व्यक्ति की आत्मिक चेतना के विकास के पूर्ण और अपूर्ण स्तर के रूप में माने जाने लगते हैं जिससे यह भेदमूलक व्यवहार ही हमें अभेद (परमार्थ) में प्रविष्ट करा देता है;-

**सर्वथा तावदत्र प्रमेये भगवत एव भेदने च अभेदने च**
**स्वातन्त्र्यं घटगताभासभेदाभेद-दृष्टिरेव**
**परमार्थाद्वयदृष्टिप्रवेशे उपायः समवलम्बनीयः, न तु**
**व्यवहारोऽपि अयं परमेश्वरस्वरूपानुप्रवेशविरोधी । *7**

वस्तुतः काश्मीरशिवाद्वयवाद में यत्पिण्डे तत् ब्रह्माण्डे कहकर तथा योगी और परमशिव के आमर्शन में एकरूपता दिखाकर और भोगमोक्ष का सामरस्य दिखाकर यह दर्शन व्यक्ति-चेतना और समष्टि-चेतना की एकतानता को प्रदर्शित करता है क्योंकि यह व्यक्ति को साध्य मानकर उसके विकास की सम्भावनाओं के समस्त दरवाज़े खुले रखना चाहता है।

इसी प्रकार कश्मीर शिवाद्वयवाद की योगिनी परम्परा नारी विमर्श के क्षेत्र में एक सुदृढ प्रतिमान है जिसमें नारी शक्ति को समस्त स्वातन्त्र्य से युक्त बनाने व मानने की परम्परा रही है , यहां तक कि बिना दूती के यहाँ की तांत्रिक प्रक्रिया में समावेश ही सम्भव नहीं है।

अपने को पराद्वैत संज्ञा से विभूषित करने वाले काश्मीर शिवद्वयवाद के लिए जाति आदि का कोई महत्व नहीं है सारे शैवदार्शनिक इसे कल्पित मानते हैं,, तन्त्रालोक ,परात्रीशिका आदि ग्रन्थों में आचार्य अभिनवगुप्त कहते हैं;

**संवित्स्वाभावे नो जातिप्रभृतिः कापि कल्पना ।*8**
**जातीनां च ब्रह्मणादीनां नास्ति स्थितिः,**
**कल्पितत्वात्। *9**

वे ऐसी किसी भी प्रकार के भेदभाव को खण्डित मानसिकता का परिणाम मानते हैं और कहते हैं कि ऐसा सोचने वाले

2024 TPJ | VOLUME 2, ISSUE 1
April - June | ISSN – 2584- 0517

की चेतना भी खण्डित हो जाती है जिससे वह पूर्ण-बोध को कभी नहीं प्राप्त कर सकता है । *10

इसी प्रकार क्षेमराज और महेश्वरानन्द भी क्रमश: स्वच्छन्द-तन्त्र-उद्योत और महार्थमंजरी में जाति आदि के आग्रह को अनुचित बताते हैं। कुलार्णव तन्त्र में अष्टपाशों का वर्णन भी इसी अंतर्दृष्टि को लेकर चलता है:-

**घृणा शंका भयं लज्जा जुगुप्सा चेति पञ्चमी ।**
**कुलं जातिश्च शीलं चेत्यष्टौ पाशा: प्रकीर्तिताः ।।*11**

तन्त्रालोक में भी महाभारत को उद्धृत कर यही बात कही गई है। तन्त्रालोक के टीकाकार जयरथ ने इन वचनों को उद्धृत किया है-

**शूद्रोऽपि शीलसम्पन्नो गुणवान् ब्राह्मणो भवेत्।**
**पञ्चेन्द्रियार्णवं घोरं यदि शूद्रोऽपि तीर्णवान् ।।**
**तस्मै दानं प्रदातव्यमप्रमेयं युधिष्ठिर ।**
**न जातिर्दृश्यते राजन् गुणाः कल्याणकारकाः।।**
**एभिर्गुणैर्विमुक्तात्मा ब्राह्मणोऽपि न मोक्षभाक् ।।**
**द्विजोऽपि मायी त्याज्यस्तु म्लेच्छो ग्राह्यो ह्यमायकः ।**
**स प्रियस्तु महेशस्य चतुर्वेदो न दाम्भिकः ।।**
**ब्राह्मणेन कृतं पापं शूद्रेण सुकृतं कृतम्।**
**किं तत्र कारणं जातिर्धर्माधर्मेषु शस्यते।।*12**

**स्वच्छन्दतन्त्र के ये वचन भी इस प्रसंग में दर्शनीय हैं-**

**ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्चान्येऽथवा प्रिये।**
**सर्वे ते समधर्माणः शिवधर्मे नियोजिताः ।।**
**एकैव सा स्मृता जातिर्भैरवीया शिवाऽव्यया।**
**तन्त्रमेतत् समाश्रित्य प्राग्जातिं नह्युदीरयेत् ।।**
**प्राग्जात्युदीरणाद् देवि प्रायश्चित्ती भवेन्नरः।।*13**

## उपसंहार

तन्त्रश्रुति के इन्हीं विचारों पर चलते हुए महेश्वरानन्द ने महार्थमंजरीपरिमल (पृ. १४५) में ब्राह्मण, चाण्डाल आदि की व्यवस्था को त्याज्य माना है। कालपाद-संहिता शिवदृष्टि (३.११) में स्मृत है। क्षेमराज ने नेत्रतन्त्रोद्योत (१०.१०) में इसका एक वचन उद्धृत किया है, जिसके अनुसार श्वपचों को भी दीक्षा का अधिकारी माना गया है।

आचार्य अभिनवगुप्त साहित्य क्षेत्र में भी इसी शिवाद्वयवादी दृष्टि से अनुप्राणित होकर अधिकारी का अत्यंत सामजिक लक्षण करते हैं – अधिकारी चात्र विमलप्रतिभानशालीसहृदय:। वस्तुतः इन सभी प्रमाणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि काश्मीर शैव दर्शन में जाति,वर्ण,लिंग आदि किसी भी प्रकार के भेद-अभिमान को दुराग्रह मानकर इसको हेय कोटि में रखा गया है । वर्तमान समय में विश्व की समस्त सभ्यताओं में इस तरह के भेदबुद्धि के दुराग्रह के कारण मानव में आपस में द्वेष की भावना व्याप्त है जिसके कारण मानव को मानव समाज से ही कष्ट प्राप्त हो रहे हैं ; ऐसे में शिवाद्वयवाद के अनुशीलन से मानव के व्यक्तित्व को सार्वभौमिक समता भावना से अनुप्राणित करके मानव सभ्यता को स्वात्मघाती-स्वभाव से बचाया जा सकता है। वास्तव में काश्मीर शैवदर्शन अद्वैत-पद्धतिशास्त्र है जो कि केवल संस्कृति और सभ्यता की ओर ना देखकर चेतना के प्रति अभिमुख होकर चलता है

अतः जन मानस में सामाजिक-समता युक्त मानवतावादी दृष्टिकोण के निर्माण के लिए इस शास्त्र का उपयोग स्वयं के द्वारा मानवता की आदर्श-प्रतिष्ठा और संरक्षण के लिए किया जाना चाहिए ।

## संदर्भ-

1. शिवदृष्टि;आह्निक 5
2. गीतार्थ-संग्रह 6.31
3. तन्त्रालोक 4/274-275
4. विज्ञानभैरव तंत्र ४१वी धारणा
5. शिवदृष्टि 11-12
6. लाल्ल्वाक्यानि, वाख 8
7. भास्करी भाग 2
8. तंत्रालोक 15/ 599
9. परात्रीशिका-विवरण
10. तंत्रालोक 15/ 600
11. कुलार्णवतन्त्र 13.90
12. तन्त्रालोक 15/513-516
13. स्वछ्न्दतन्त्र 4/540-546

2024 TPJ | VOLUME 2, ISSUE 1
April - June | ISSN – 2584- 0517

2024 TPJ | VOLUME 2, ISSUE 1
April - June | ISSN – 2584- 0517